है न चौथा कलश !

`उभयनयविरोधध्वंसिनी' क्या कहते हैं ? कि निश्चयव्यवहार दो नय, विषय के भेद से परस्पर विरोधी (है), क्या कहा ? निश्चयनय का विषय त्रिकाली द्रव्यस्वभाव है। शुद्ध चैतन्य अखण्ड परमस्वभाव भाव परमात्म द्रव्य, वह निश्चय का विषय है। उसके लक्ष्य से, परमात्म द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन जो होता है। प्रथम धर्म की शुरूआत... वह त्रिकाली ज्ञायक परमात्मा द्रव्य वस्तु, उसके

आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। व्यवहारनय है, पर्याय है, राग है गुण भेद है, परंतु वह तो व्यवहारनय का विषय है, निश्चयनय के विषय से व्यवहारनय का विषय विरुद्ध है, दोनों में विरुद्धता है। आहाहा ! यह निश्चय यथार्थ दृष्टि जो है अथवा ज्ञान है। वह त्रिकाली को विषय करती है, पूर्णानंदस्वरूप सहजानंद प्रभु ! उसका वह विषय है, यह निश्चयनय का ध्येय है, यह सम्यग्दर्शन का आश्रय करनेवाली चीज है। आहाहा !

और व्यवहारनय, वर्तमानपर्याय अवस्था और रागादिक भाव, उनको बतानेवाला व्यवहारनय है, तब दोनों के विषय में विरुद्धता हो गई। है ? निश्चय और व्यवहार इन दो नयों के विषय अर्थात उसके लक्ष्य का जो आश्रय है उसमें परस्पर विरोध है, इस विरोध का नाश करनेवाला ***स्याद्पद से चिह्नित, आहा ! अपेक्षा से कहना है। त्रिकाली सत्य है और पर्याय असत्य है - ऐसा जो कहना है यह अपेक्षा से कहना है त्रिकाली सत्य जो ध्रुव चैतन्यमूर्ति परमानंदप्रभु वह ही सत्य है, उसको मुख्य कहकर निश्चय कहकर उसे सम्यग्दर्शन का विषय बताया। आहाहा ! सूक्ष्मबात है बापू*** !

और एक समय की पर्याय का और राग शुभ दया-दान-भक्ति का राग आदि हो यह सब पर्याय का व्यवहारनय का विषय, उसको `नहीं है', गौण करके `नहीं है' - ऐसा कहने में आया है ! ऐसी कठिन बात ! जगत को बाहर को क्रियाकाण्ड से - ऐसा होगा और वैसा होगा, वह तो पुण्य बंध का कारण है कोई धर्म नहीं। आहाहा ! (श्रोता :- मिथ्यात्व बिना का पुण्य कि मिथ्यात्व सहित का पुण्य ?) मिथ्यात्व सहित का पुण्य, ***भगवान की प्रतिमा, पूजा, जिनदर्शन श्रवण, वांचन, यह सब शुभराग है, राग है और उसमें धर्म मानते है, यह मिथ्यात्व सहित पुण्य है।*** आहाहाहा ! कठिन बात है भाई !

यहाँ कहते हैं कि मूलवस्तु तो त्रिकाली आत्मा आनंदस्वरूप भगवान, सहजात्मस्वरूप शुद्ध उसको विषय करनेवाला नय... (निश्चय) उस नय को विषय बननेवाला, नय का विषय ध्रुव, उसको सत्य कहा और व्यवहारनय का विषय पर्याय वर्तमान अवस्था और दया-दान-रागादिक के भाव, उसको असत्य कहा, इस अपेक्षा से कहा है। मुख्य की दृष्टि कराने को, व्यवहार को गौण करके (किसी) अपेक्षा से, `नहीं है' - ऐसा कहने में आया है। आहाहाहाहा !

जिन भगवान के वचन वाणी है उसमें जो पुरुष रमते है, क्या कहते हैं ? भगवान जिनेन्द्रदेव की वाणी में तो यह पूर्णानंद का नाथ प्रभु शुद्धचैतन्य वही उपादेय कहने में आया है। आहा ! वीतराग की वाणी में जिनेश्वर की दिव्यध्वनि में भगवान

पूर्णानंद प्रभु, पर्याय नहीं राग भी नहीं, निमित्त भी नहीं, गुण-गुणी का भेद भी नहीं, ऐसी अभेद चीज जो है, उसको ही जिनवाणी में आदर करने लायक कहने में आया है। आहाहाहा ! इसमें है न ! कल कहा था ना, यह कल यहाँ नहीं था चौथी गाथा में कलश टीका (के) कलश में कहा है न लो !

'जिनवचसि' दिव्यध्वनि के द्वारा कहीं हुई है उपादेयरूप शुद्धजीववस्तु... त्रिकाल सच्चिदानंदप्रभु ! शुद्धचैतन्यद्रव्य स्वभाव ! वह जिनवचन में आदरने लायक कहने में आया है, पर्याय और राग आदर करने लायक है - ऐसा जिनवाणी में है नहीं। आहाहाहा ! ऐसी बात है हाँ ? राजमलजी ने ऐसी टीका की है, 'जिनवचसि' अर्थात **दिव्यध्वनि द्वारा कहने में आया है ऐसी जो शुद्धजीव वस्तु वही उपादेय है।** ***वहाँ नजर करने लायक है और वही आदरणीय है।***

वर्तमान पर्याय और दया-दान-व्रत-भक्ति आदि का भाव, वह आदर करने लायक नहीं। यह जानने लायक है, कि है, आदर करने योग्य नहीं। आहाहा ! समझ में आता है ? और एक जीववस्तु, उसमें रमते सावधान होकर रुचि श्रद्धा प्रतीति करते हैं। त्रिकाल... पूर्णानंदप्रभु ! उसकी रुचि प्रतीति, श्रद्धा करते हैं, शुद्ध जीव का प्रत्यक्षरूप से अनुभव करते हैं... उसका अर्थ यह है, ***श्रद्धा रुचि प्रतीति का अर्थ यह कि भगवानआत्मा पूर्ण शुद्ध एक समय की पर्याय रहित - ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा यह वस्तु को प्रत्यक्षरूप अनुभव करते हैं इसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। आहाहाहा ! (श्रोता :- अनुभव तो ज्ञान की पर्याय है) भले ही ज्ञान की पर्याय, उसमें प्रतीति है कि नहीं ? साथ में आचरण भी है कि नहीं स्थिरता ? स्वरूप आचरण। समझ में आया ?***

श्रीमद् में तो अनुभव लक्ष्य प्रतीति... लक्ष्य यह ज्ञान, प्रतीति यह श्रद्धा और अनुभव को आचरण कहा है। परमात्मस्वरूप अपना बाहर की चीज को निमित्त भले हो, साक्षात् भगवान हो तब भी परद्रव्य के लक्ष्य से तो राग ही होगा। उससे धर्म होगा; यह तीनकाल में नहीं। आहाहाहा ! समझे कुछ ?

तब जिनमंदिर और भगवान की प्रतिमा और सम्मेदशिखर, यह सब पर के लक्ष्य से तो शुभ राग ही होगा, (यह) आयेगा परंतु है राग। है हेय, छोड़ने लायक। आहाहा ! परमात्मस्वरूप एक शुद्ध चैतन्य... कल प्रश्न था न, कि भाई प्राप्ति के पहले क्या होता है ? कि यह क्या हो उसका कहीं विकल्प कैसा हो यह उसका किसीका प्रमाण हो यह अपने इसमें, बेन के वचनामृत में लिखा है, पहला विकल्प कैसा हो - ऐसा कोई नियम नहीं है, विकल्प होता अवश्य परंतु - ऐसा ही हो कि मैं शुद्ध हूँ अखण्ड हूँ एक हूँ... किस प्रकार के विकल्प आये - ऐसा होता

नहीं, कैसा आये उसे उस समय - ऐसा (नियम नहीं)। समझे कुछ ? बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा !

फिर भी विकल्प आये, यह वस्तु नहीं। उसके अवलम्बन से आत्मा का धर्म सम्यग्दर्शन होता है, यह नहीं। आहाहाहा ! विकल्प है वह तो व्यवहारनय का विषय है, राग आया यह व्यवहारनय का विषय है। यह व्यवहारनय है यह जानने लायक है, परन्तु हेय रूप में... छोड़ने लायक जैसा जानने लायक है, और त्रिकाली भगवान पूर्णानंदप्रभु उपादेय अपेक्षा जानने लायक है। ऐसी बातें है।

है ? प्रत्यक्षरूप अनुभव, उसका नाम रुचि श्रद्धा प्रतीति, उसका नाम रुचि श्रद्धा प्रतीति यों की यो श्रद्धा हमारे आत्मा की है - ऐसा नहीं। आहाहा ! भगवान पूर्णानंदप्रभु ! ***वस्तु ध्रुव उसका वर्तमान पर्याय में प्रत्यक्ष अनुभव होना, और इस अनुभव में प्रतीति होना उसका नाम सम्यग्दर्शन है।*** आहाहा ! अभी तो मार्ग में बदलाव (आया), बाहर से होगा - ऐसा करो, व्रत करो और तपस्या करो और भक्ति करो मंदिर बनाओ एवं प्रतिमा के दर्शन करो और यात्रा करो, धूल में नहीं। मुनि (राज) को आहार दो। मुनि को आहार दो, यह तो सभी राग है। आहाहा ! मुनि को आहार देने की क्रिया का भाव यह राग है, यह कोई धर्म नहीं। आहाहा ! धर्म तो अंदर आत्मा पूर्णानंदप्रभु, उसको उपादेय बनाकर एकाग्रता होना, और निर्विकल्प दशा प्रगट होना उसका नाम धर्म है। ऐसी बात है। आहाहा !

(बीच में) पूर्ण वीतराग जब न हो तब तक बीच में - ऐसा राग आता है। व्रत का भक्ति का आता है परंतु है यह हेय, उससे बंधन होता है। समझ में आया ? तब कहा वचन पुद्गल जिनवचन है न ! गाथा में तो - ऐसा है, `जिनवचसिरमन्ते' है ? तब कहते हैं कि जिनवचन तो पुद्गल है, जड़ है, जड़ में रमना है ? पाठ तो - ऐसा है `जिनवचसिरमन्ते' परंतु आचार्य कहते हैं उसका अर्थ क्या ? उसका आशय क्या ? पुद्गल... उसकी रुचि करने पर स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती, ऐसे वचन द्वारा कहने में आनेवाली कोई उपादेय वस्तु, आदरणीय वस्तु, आहाहाहा ! उसका अनुभव करना यह फल प्राप्ति है। आहाहाहा ! कलश टीका है न पहले आया था कल नहीं थी। कल यहाँ नहीं थी न !

`जिनवचसिरमन्ते' हाँ ? इसका अर्थ यह, और दूसरी बात कहें तो चारों अनुयोगों का सार तो वीतरागता है, और वीतरागता जो है यह जिनवचन में वीतरागता बताई (है) कि वीतरागता प्रगट करो। तब वीतरागता प्रगट कब होगी ? कि त्रिकाली भगवान ज्ञायकस्वरूप है उसका आश्रय करने से वीतरागता (प्रगट) होगी। आहाहाहा ! तब `जिनवचसिरमन्ते' में यह क्यों कहा ? ***`जिनवचसिरमन्ते' इसमें जीव उपादेय - ऐसा***

क्यों कहा ? कि जिनवचन में चार अनुयोगों में सार वीतरागता बताना है, तात्पर्य अपेक्षा वीतरागता बताना है, तो वीतरागता जब बताना है, तो वीतरागता होगी कब ? यह तो त्रिकाली द्रव्य... उसके आश्रय से होगी। उसका मतलब यह हुआ, `जिनवचसिरमन्ते' समझ में आया ? आहाहाहा ! भगवान की वाणी दिव्यध्वनि त्रिलोकनाथ परमात्मा उनकी वाणी में चारों अनुयोग आये परंतु उसका तात्पर्य क्या ? भले कथानुयोग आये करणानुयोग आये, चरणानुयोग आये, परंतु उसका तात्पर्य क्या ? कि, वीतरागता। तब जिनवचन की तात्पर्य वीतरागता बताना है, तब वीतरागता कब होगी ? शुरुआत में त्रिकाली जिनस्वरूपी भगवानआत्मा। परमानंदस्वरूप प्रभु ! वह वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है उसके अवलम्बन से वीतरागता, सम्यग्दर्शन होगा। आहाहाहा ! समझ में आया ?

क्या कहा ? `जिनवचसिरमन्ते' का - ऐसा अर्थ क्यों किया उन्होंने ? आहाहा ! कोई कहे यह तो कलश (टीका)कार ने किया है, परंतु क्यों किया ? कारण कि जिनवचन जितना है चारों अनुयोगों का कथन भगवान की वाणी में आया। तो यदि भगवान की वाणी में आया, उसका तात्पर्य क्या ? उसका फल क्या, कि वीतरागता ! चारों अनुयोग का तात्पर्य वीतरागता। ***कहीं राग करना और राग का फल वह जिनवचन में है ही नहीं। यह तो जानने की अपेक्षा कही। समझ में आया ? और यह तो वीतरागता प्रगट करने को कहा (है) तब वीतरागता प्रगट कब हो ? वह कहीं वर्तमान पर्याय है, कि राग है, कि निमित्त है उसके आश्रय से वीतरागता नहीं होगी।*** आहाहाहाहा !

तब वीतरागता पर्याय में कब होगी ? कि वीतरागस्वरूप भगवान जिनस्वरूपी प्रभु आत्मा है, अप्पा सो परमप्पा। आत्मा सो परमात्मा। आहाहा ! यह भगवानआत्मा परमात्म स्वरूप त्रिकाल, उसका आश्रय लेने से वीतरागता होती है, तो उसमें जिनवचन का तात्पर्य बताया है, भाई ! कि राजमल (जी) ने - ऐसा इसमें क्यों किया, वहाँ तो जिनवचसिरमंते कहा - ऐसा अर्थ कैसे किया ? इन वीतराग वचनों में शास्त्र जो आये, उसका तात्पर्य वीतरागता है और वीतरागता जो है यह त्रिकाली आत्मा आनंदस्वरूप भगवान उपादेय है, उसीको उपादेय करें (मानें) उसीको वीतरागता होगी समझ में आया ?

(श्रोता :- बतानेवाले के प्रति आदर हो तो आत्मा प्रति आदर हो न) बतानेवाले की यहाँ जरुरत नहीं। बतानेवाला बतानेवाले के घर रहा। यह तो राग है। बतानेवाले को सुनते है यह तो राग है, सूक्ष्म बात है भाई ! आहाहा ! बतानेवाला आया और सुना वह तो राग है, परंतु राग का तात्पर्य तो बाद में वीतरागता है, तब उसका आशय क्या हुआ ? कि राग का भी नहीं और सुनना है - ऐसा भी नहीं। आहाहा ! १७२ गाथा पंचास्तिकाय ! सारे शास्त्र वीतराग जिनशासन सारे शास्त्र का तात्पर्य

वीतरागता है - ऐसा १७२ गाथा में लिया। तब `जिनवचसिरमन्ते' का अर्थ - ऐसा क्यों किया ? सार कहा है कि, वीतरागता बताना यह जैनशासन की वाणी का सार है, तो वीतरागता कब होगी ? कि `जिनवचसिरमन्ते', वीतरागता बतानेवाली वाणी। यह वीतरागता कब होगी ? कि त्रिकाली (को) उपादेय मानकर वीतरागता होगी तो जिनवचन - ऐसा कहते हैं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

- ऐसा अर्थ क्यों किया और इसका अर्थ साधारण लिया है, इसका तो मर्म लिया है भाई ! क्या ? क्या कहा ? आहाहा ! मर्म क्या ? कि जिनवचन में रमन्ते इतनी व्याख्या शब्द पाठ है। अब जिनवचन है वह तो जड़ है उसमें तो कुछ रमना है नहीं अब जिनवचन में कहने में आया जो चार अनुयोग उसका सार तात्पर्य फल क्या है वीतरागता, तव वीतरागता जो है वह कब प्रगट होगी ? यह त्रिकाली ज्ञायकभाव भगवान पूर्णानंदप्रभु, उसके सन्मुख होनेपर उसका आश्रय लेते हैं, तो वीतरागता होगी, तब चारों अनुयोगों में उपादेय यह आत्मा है, उसमें रमना है - ऐसा कहने में आया है। राजमलजी ! देवीलालजी ! आहाहा !

वस्तु कही है। इसे `जिनवचंसिरमंते' यहाँ - ऐसा क्यों कहा ? जिनवचन आत्मा को उपादेय कहते हैं, ऐसा क्यों कहा ? कि जिनवचन में तो वीतरागता तात्पर्य है। एक वीतरागता सार बताना है, फल रूप में, तब वीतरागता आत्मा का फल कैसे होगा ? वह त्रिकाली वस्तु भगवान पूर्णानंद जिसमें निमित्त तो नहीं, देव-गुरुका आश्रय भी नहीं। क्योंकि देव-गुरु पर हैं, उसकी श्रद्धा करना वह भी राग है, यहाँ तो वीतरागता तात्पर्य है। जिनवचन का तात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा ! छोटालालजी ! (श्रोता :- अपूर्व बात है।) ऐसी बाते हैं। (श्रोता :- निहाल हो जायें ऐसी बात है) शैली तो देखो प्रभु की। आहाहा ! जिनवचन - ऐसा कहें... चारो अनुयोग, चाहे तो कथानुयोग हो, चरणानुयोग हो परंतु उसका तात्पर्य तो वीतरागता बताना है, वीतरागता प्रगट करना, तब वीतरागता प्रगट करना तब उसका अर्थ यह हुआ कि चारों अनुयोग में इसका अर्थ वीतरागता प्रगट करना है ? पूर्णानंद प्रभु को उपादेय करे तो उसको वीतरागता होगी। आहाहाहा ! न्याय है कि नहीं ? आहाहा !

राजमलजीने तो मर्म निकाला है - ऐसा कोई अर्थ कर सकते नहीं साधक ! अभी जगमोहनलालने किया है परंतु यह तो `जिनवचंसिरमंते' क्यों किया - ऐसा अर्थ ? वीतराग की वाणी चार अनुयोगरूप निकली `दिव्यध्वनि' तब भी उसका तात्पर्य क्या ? फल क्या ? कि वीतरागता प्रगट करना, तब वीतरागता प्रगट कब होगी ? कि त्रिकाली जिनस्वरूप जिन, घट घट में जिन वसे, भगवान आत्मा जिनस्वरूपी परमात्मा हैवही आत्मा है। आहाहा ! `घट घट अंतर जिन वसे घट घट अंतर जैन, मत

मदिरा के पान सो मतवाला समझे न' भगवान अंदर जिनस्वरूपी प्रभु है... वीतरागता तात्पर्य है उसका अर्थ जिन स्वरूपका आश्रय करना। मोहनलालजी ! १७२ गाथा में तो - ऐसा कहा, पंचास्तिकाय में कि भाई सूत्र तात्पर्य तो शब्द शब्द गाथा में आया वह तात्पर्य कहा, अब सारे शास्त्र का तात्पर्य क्या ? भगवानने चारो अनुयोग कहे, परंतु उसको फल क्या ? उनका कहने का फल क्या, कि वीतरागता प्रगट करना यह बताया है, तो यह वीतरागता प्रगट होगी कब ? यह त्रिकाली ज्ञायक को उपादेय बनाके जाने माने उसको वीतरागता होगी।

प्रथम सम्यग्दर्शन भी वीतरागी पर्याय है। त्रिकाली भगवान जिन स्वरूपी परमात्मा, यह अप्पा सो परमात्मा। अप्पा सो परम-अप्पा। तारण स्वामी में यह शब्द है `अप्पा सो परमप्पा'। आत्मा सो परमात्मा है, दूसरे परमात्मा... उनके घर रहे, यह आत्मा स्वयं परमात्म स्वरूप है अंदर स्वशक्ति। आहाहा ! यह वीतराग स्वरूप ही प्रभु है। अर्थात वीतरागता बताने का हेतु, स्वका आश्रय करना वह सभी अनुयोगों का सार है। भाई ! यह तो `जिनवचंसिरमंते' - ऐसा अर्थ क्यों किया उन्होने ? भाई ! यह तो वस्तु के मर्म का अर्थ किया है। आहाहा !

जिनवचनमें ऐसी बात बहुत ली, परंतु उसका फल क्या ? वीतरागता प्रगट करना, तब वीतरागता प्रगट कब होगी ? प्रथम सम्यग्दर्शन भी वीतराग पर्याय है, सम्यग्दर्शन (कहीं) सराग समकित - ऐसा है नहीं कहीं। आहाहा ! सराग समकित और वीतराग समकित यह तो चरणानुयोग अपेक्षा दोषो का वहाँ ज्ञान कराने को (है)। कि समकित तो वीतराग पर्याय ही है। प्रथम चौथे गुणस्थान की समकित दशा यह वीतरागी पर्याय है, तब वीतरागी पर्याय है यह जैन शासन का तात्पर्य है, तब वीतरागता पर्याय है यह प्रगट कैसे होगी ? तब कहते (कि) द्रव्य को उपादेय मानने से। त्रिकाली को उपादेय माने प्रथम से अंत तक। पूर्ण वीतरागता प्रगट होने में भी पूर्ण उपादेय का आश्रय करना, वह जैन शासन का तात्पर्य है। आहाहा ! गजब बात है। कैसी शैली ! कैसी शैली ! आहाहा ! और कैसी रीति न्याय से बैठती। आहाहा ! - ऐसा अर्थ किया (है)।

यह लोगो को रूचे नहीं फिर - ऐसा अर्थ उसमें से निकालते है कि `जिनवचंसिरमंते' जिनवचन में तो दो नय कहे हैं, तब दोनो नयों में रमना - ऐसी है ही नहीं, दोनो नयों में तो विरोध है, इसलिए तो कहते हैं, विरोध है, तो दोनों में रमना ? निश्चयमें रमना और व्यवहारमें ? आहाहा ! समझ में आया ? कठिन मार्ग बापा ! आहाहाहा ! वहाँ तो सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो कल्याण हो जायेगा, धूलमें नहीं कही वहाँ लाख बार जाओ करोड़बार, सम्मेदशिखर (यात्रा) यह तो शुभ राग है, आता है परंतु

यह धर्म नहीं। यह वीतरागता नहीं। आहाहाहा ! जिनवचन में वीतरागता बताना है। पंचास्तिकाय ! चेतनजी ! पंचास्तिकाय १७२ गाथा। चारों अनुयोगों का सार शास्त्र (तात्पर्य) वीतरागता लाना (है) वीतरागता कब आयेगी ? आहाहा ! कि वीतराग स्वरूप जो, घट घट अंतर जिन वसे, जिन प्रभु स्वयं घट घट में भगवान परमात्मा स्वयं है, उसका आश्रय करने से वीतरागता होगी, तब चारों अनुयोगों में स्व का आश्रय करना वह उसका आशय है। देवीलालजी ! हाँ ? आहाहा !

गजब बात की है न ? यह सभी विचार आये थे हाँ कि अभी, इसने - ऐसा क्यों कहा ? यह भाई - ऐसा यहीं `जिनवचसिरमन्ते' शब्द है, वहाँ जिनवचन में उपादेय जिनवस्तु जो कही उसमें रमना, उसका अर्थ क्या ? आहाहाहा ! यह अर्थ तो वही करे। दूसरों का भाव नहीं... अंदर से कहीं का कहीं निकालें यह कहीं। आहाहाहा ! जिन वीतराग त्रिलोकनाथ की चाहे जो वाणी हो चारों अनुयोगों की, परंतु उसमें से वीतरागता सार निकालना है। वीतरागभगवान है, तब वाणी में वीतरागता कैसे प्रगट हो - ऐसा बताना है। तो वह वीतरागता सारे अनुयोगों का सार जिनशासन का सभी शास्त्रों का तात्पर्य है, तब यह वीतरागता कब होगी ?

आहाहाहा ! त्रिकाली जिनस्वरूप भगवानआत्मा, परमात्मा स्वरूपी विराजमान आत्मा है, आहाहाहाहा ! उसका आश्रय करने से, क्योंकि वीतरागस्वरूपी जिनस्वरूपी आत्मा है उसका आश्रय करने से वीतरागता होगी। आहाहा ! चारों अनुयोगों की पुकार यह एक है। समझ में आया ? व्रत आना और भक्ति आना, यह आते हैं, यह अलग बात है। परंतु हैं हेय, यह वीतरागता बताना (है) यह उसमें आया नहीं। आहाहाहा ! ऐसे व्रत करना और ऐसे उपवास करना - ऐसी चरणानुयोग में बात आती है परंतु उसका अर्थ क्या ?

(स्व) सन्मुख होने के बाद अस्थिरता रहती है, तब - ऐसा विकल्प आता है, परंतु वह विकल्प आदरणीय नहीं। आदरणीय तो त्रिकाली ज्ञायकभाव, वीतरागभाव उत्पन्न होने में कारण है अतः आदरणीय है। आहाहा ! और उसमें से भी तात्पर्य वह वीतराग भाव (का) निकला, तव (वीतरागता) त्रिकाली के आश्रय से होती है। तो व्यवहार के आश्रय से तो वीतरागता नहीं हो, तब व्यवहार हेय हो गया। जानने लायक हो गया। जानने लायक, जानने लायक है इतना। आहाहा ! गजब बात है, निश्चय और व्यवहार की संधि।

यहाँ तो बाहर में उपवास करे और भक्ति की और पूजा की एवं पांच पच्चीस लाख खर्च किये और हो गया धर्म। धूल में धर्म नहीं। धर्म कैसा वहाँ ? कदाचित राग की मंदता किया हो तो वह पुण्य है, राग है यह कहीं धर्म नहीं। आहाहाहा !

शेठ ! - ऐसा मार्ग है। आहाहा ! - ऐसा कैसा अर्थ किया है ? इन्होंने अरे क्या किया होगा ? आहाहा ! जिनवचन वीतराग का वचन, वीतरागता प्रगट करने का वचन, वाच्य। आहाहा ! राग तो अनंतबार प्रगट किया। वह कोई जिनवचन, शास्त्र का तात्पर्य नहीं कहीं। व्यवहार-व्यवहार अकेला आता है। यह कोई शास्त्र का तात्पर्य नहीं। आहाहाहा !

समकिती को भी व्यवहार आता है, यह कहीं शास्त्र का तात्पर्य नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? आहा ! भगवान त्रिलोकनाथ। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वर ! उनकी दिव्यध्वनि ओमकार ध्वनि `मुखओमकार ध्वनि' सुनी अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेश `भविकजीव संशय निवारे' परंतु यह संशय निवारे अर्थात कि मिथ्यात्व टाले अर्थात राग की एकता टाले और वीतरागता करे। आहाहाहा ! उन चारों अनुयोगों में आगम की रचना गणधर ने उसमें की। आहाहाहा ! क्या शैली ? क्या शैली ? गजब शैली ? चारों तरफ से मिलाओ तो ऐसा मिलान हो जाता है। आहाहा ! कि ग्यारहवीं गाथा में कहा १२ वीं में यहाँ कहा। ११ वीं में कहा कि त्रिकाली भगवान पूर्णानंदप्रभु, यह परमात्मा है और उसका आश्रय करो, उसका अवलम्बन करो, आहा ! यह अवलम्बन तो वीतरागता उत्पन्न होने का कारण है। वीतरागी स्वरूप त्रिकाली है उसीका अवलम्बन, यह वीतरागता की पर्याय उत्पन्न करने का कारण है। आहाहाहा ! ***बीच में व्यवहार आता है वह (व्यवहार) जैनशासन का वीतराग वाणी का तात्पर्य नहीं है। आहाहाहा ! यह तो बीच में पुरुषार्थ की कमजोरी से आता है। यह कोई शास्त्र का तात्पर्य नहीं। आहाहाहा ! यह व्यवहार कहीं शास्त्र का तात्पर्य नहीं।*** आहाहा ! सारे करोड़ों अरबों शास्त्र, आहाहा ! एक आचारंग में अठारह हजार पद, और एक पद में इक्यावन करोड़ से भी ज्यादा श्लोक, पहला एक आचारंग सूत्र १८ हजार पद एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक- ऐसा - ऐसा डबल छत्रीस हजार सूत्रांग, ७२ हजार पद, यह सब शास्त्र बारह अंग, तात्पर्य क्या है ? कि जो अनंत काल में स्व का आश्रय लेकर वीतरागता प्रगट की नहीं, यह स्व का आश्रय लेकर वीतरागता प्रगट करना यह सब (शास्त्रों का) तात्पर्य है। आहाहा ! समझ में आया ? देखो यह बात दूसरे प्रकार से आयी। आज बात हिन्दी भाई आये है न, भाई ! यह बहुत सरस बात है। आहाहा ! `जिनवचसिरमन्ते' `जो पुरुष उसमें रमते हैं प्रचुरता सहित अभ्यास करते है अर्थात जिनस्वरूपी भगवान अंदर विराजमान हैं' उसका आश्रय लेकर वीतरागता होती है तब वह जिन वचन में वीतरागता बताना है तब वीतरागता स्व के आश्रय से होती है। तब जिनवचन में स्व को उपादेय करने का कथन है। आहाहाहाहा ! तब जिनवचन में त्रिकाली भगवान उपादेय आनंदकंद प्रभु, वह ही उपादेय

कहने में जिनवचन में आया है। व्यवहार उपादेय है - ऐसा जिनवचन में आया नहीं। व्यवहार आता है, परंतु हेय है। आहाहा ! बाबूलालजी ! आज तो थोड़ा हिन्दी (में) आया। आहाहा !

यह तो राजमलजी ने - ऐसा अर्थ क्योंकिया ? जिनवचन तो पुद्गल है, तब जिनवचन में कहा हुआ जो भाव है उसका तात्पर्य तो वीतरागता है। तब वीतरागता जिनवचन में कही, तब यह वीतरागता उत्पन्न होगी स्व के आश्रय से, अतः जिनवचन में स्व को उपादेय कहा है। स्व त्रिकाली भगवान यह उपादेय कहकर वीतरागता प्रगट करने को कहा है। आहाहा ! चारों अनुयोग बारह अंग, कोई भी... (चारो अनुयोग हो), अमुक में यह कहा न अमुक में यह कहा न चरणानुयोग में यह सब कहा। आहाहा ! उसका अर्थ ? कि तुम्हारा स्वरूप ही ज्ञातादृष्टा है, ज्ञातादृष्टा हो जा, तभी वीतरागता होगी। आहाहाहाहा ! जयसुखभाई ! यह झगड़ा करे। इससे - ऐसा है न, इसमें - ऐसा है न, इस व्यवहार से निश्चय होता है, प्रभु परंतु - ऐसा नहीं होता। प्रभु तुम अपने तत्त्व की शैली को भूल गये हो और वीतराग (देव) का यह कहना नहीं, वीतराग को तो (- ऐसा) कहना है ही नहीं। आहाहाहा !

वीतराग को तो परमात्मा को तो यह कहना है, त्रिलोकनाथ परमात्म स्वरूप तुम हो न नाथ ! आदर सत्कार करो उसका। आहाहाहा ! वही उपादेय जानो, व्यवहार यह उपादेय नहीं, आता है परंतु हेय है और जैन अनुयोगों के शास्त्र का तात्पर्य कहीं व्यवहार और राग (करना) यह तात्पर्य नहीं। आहाहाहा ! इसलिये जिसको शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता जो स्व के आश्रय से होती है। उसको व्यवहार आता है परंतु वह व्यवहार हेय है, क्योंकि यह शास्त्र का तात्पर्य नहीं। आहाहा ! कहाँ तक यह उपादेय है कि जबतक वीतरागता केवलज्ञान पूर्ण न हो तब तक वीतरागस्वरूप भगवान को ही आदरणीय करना। आहाहा ! शैली तो देखो शैली। आहाहा ! यह वीतरागवाणी और वीतरागवाणी का यह सार। अरे प्रभु ! वाद और विवाद, निमित्त से होगा। अरे प्रभु ! यह तो निमित्त से होगा यह वाणी का तात्पर्य है क्या ?

यदि निमित्त से होगा तब तक राग होगा। आहाहाहा ! भगवान साक्षात् विराजते हैं ! समवशरण में, उनका दर्शन करना वह भी एक शुभराग है। क्योंकि यह परद्रव्य है। यह कहीं जैनशास्त्र का तात्पर्य नहीं। भगवान का दर्शन। आहाहा ! तात्पर्य तो वीतरागता। प्रथम कक्षा से ही त्रिकाली भगवान परमानंद प्रभु आत्मा परमात्मस्वरूप ही अंदर विराजमान है स्वभाव से, शक्ति से, सत्व से, तत्त्वरूप में उसका आश्रय करना वही सभी अनुयोगों का कहना है। यह आश्रय कहाँ तक, जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तबतक। क्योंकि शुरूआत में भी वीतरागता तात्पर्य है, फिर पूर्ण वीतरागता

तात्पर्य है। आहाहा ! है ? आहाहाहाहा ! तब पूर्ण वीतरागता भी स्व का पूर्ण आश्रय लेने से होती है। तब वहाँ भी यह भगवानआत्मा एक उपादेय आया। आहाहाहा ! यह जिनवचसिरमन्तेमें से यह सभी आया। आहाहा ! अपने आप पुरुष रमते है। (स्वयं) अपने आप ही अन्य कारणों के बिना, वान्तमोहाः `मिथ्यात्व रूपी भ्रमणाका' राग की एकता का मिथ्यात्वभाव, आहाहा ! स्व की एकता का तात्पर्य है तब स्व की एकता करते है तब राग की एकता स्वयं नाश हो जाती है। वमन हो जाता है ? आहाहा ! है ? वान्तमोहाः मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके, आहा ! भ्रमणा जो पुण्य से धर्म होगा और व्यवहार से धर्म होगा और निमित्त से धर्म होगा, ऐसी जो भ्रमणा मिथ्यात्वभाव वह अपने स्वभाव का आश्रय करने से मिथ्यात्वभाव नाश हो जायेगा, वमन हो जायेगा। वमन का अर्थ ? कि एकवार वमन किया उसका फिर भक्षण करते ही नहीं। आहाहाहाहा !

जिसने भगवानआत्मा पूर्णानंदप्रभु निर्विकल्प वीतराग मूर्ति का आश्रय लिया। आहाहा ! उसका जो मिथ्यात्व वमन हो गया। यह फिर मिथ्यात्व उसको आता ही नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ? स्वतः ही, वहाँ पढ़े तो कहीं समझ में आये - ऐसा नहीं वहाँ। टाइल्स में बहुत उलझ गये हों न, बोम्बे में टाइल्स का है ? थाणामें टाइल्स का, यह तो एक उदाहरण। कोई भी पदार्थ अंदर वहाँ के वहाँ घुसा करें। आहाहा !

`अन्य कारण के बिना' अर्थात क्या कहते हैं ? उसे कोई नाश करने के लिये हमने यह आश्रय लिया इसलिए नहीं, यह तो नाश होने की योग्यता से नाश होगा ही। आहाहा ! जब भगवान आनंदस्वरूप प्रभु वीतरागमूर्ति ध्रुव सच्चिदानंद अखण्ड उसका आश्रय लिया तब मिथ्यात्व का कारण बिना, अन्य कारण के बिना नाश हो जायेगा। यहाँ वीतरागता प्रगट की इसलिए नाश होगा। (- ऐसा नहीं) यह तो नाश होगा वमन उसका सहज हो जायेगा। उसकी पर्याय में उस समय का धर्म - ऐसा है। आहाहाहा ! गजब बात है न !

श्रोता :- वीतरागता प्रगट करने के लिए अपने द्रव्य के सहारे को जरुरत है कि नहीं ?

उत्तर :- वह तो वही का वही हुआ वीतराग भाव का सहारा लेना। द्रव्य के सहारे का अर्थ क्या ? वीतरागभाव का सहारा वीतरागभाव है।

श्रोता :- यह देव-गुरु-शास्त्र कुछ पर्याय को मदद करते है ?

उत्तर :- बिलकुल मदद करे नहीं। आहाहा ! देव-गुरु-शास्त्र कहीं मदद करे नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है।

देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता का विकल्प जो राग है, वह भी अपना आश्रय करने

में बिलकुल मदद करता नहीं। नुकशान होवे प्रभु ! ऐसी बात है बापा। जैनदर्शन। आहाहाहा ! यह वस्तु का स्वरूप ही - ऐसा है, कि स्वयंवीतरागस्वरूप प्रभु वीतरागस्वरूप ही है। कहा न ? `घट-घट अंतर जिन बसे,' सब घट में जिन बसे, भगवान ही जिनस्वरूप ही बसते है। आहाहाहा ! और `घट-घट अंतर जैन।' यह जिन का आश्रय लिया वह जैन। जैन कोई संप्रदाय नहीं। आहाहाहा ! कोई पक्ष नहीं, पंथ नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप (है)। आहाहाहा ! कोई पक्ष नहीं, पंथ नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप (है)। आहाहाहा ! जिनस्वरूपी भगवान। आहाहा ! उसका आश्रय लेने से वीतरागता हुई, वही शास्त्र का कहने का तात्पर्य है।

उसका अर्थ यह भी आया कि शास्त्र के अर्थ का तात्पर्य व्यवहार करना वह तात्पर्य है - ऐसा है नहीं। व्यवहार आता है, उसको जो वीतरागभाव उत्पन्न हुआ (वह) इन भावों में रहने से आता है उसको पर-प्रकाशक के रूप में ज्ञान की पर्याय उस समय पर को जानने की लायकात से उत्पन्न होती है। - ऐसा इसका स्वभाव है। जब यहाँ वीतरागस्वभाव का आश्रय लिया तो जो सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ यह सम्यग्ज्ञान वीतराग पर्याय है, और वह पर्याय स्व को जानना और जो रागादिक शेष रहता है, उसको जानना, यह राग है तो जानना - ऐसा भी नहीं। इस पर्याय का - ऐसा यह स्वभाव है कि स्वपरप्रकाशकरूप से उत्पन्न होगी। आहाहा ! यह वीतरागी सम्यग्ज्ञान है। - ऐसा उत्पन्न होगा। आहाहाहा ! गजब बात है कहाँसे कहाँ ले जाते हैं ! आहाहा !

यह स्वचैतन्य प्रभु ! निर्विकल्पचैतन्य भगवानआत्मा। द्रव्यस्वभाव का आश्रय लिया तो ज्ञान हुआ वो वीतरागी ज्ञान हुआ, क्योंकि वीतारागी स्वरूप आश्रय लेकर ज्ञान हुआ, तव वीतारागी ज्ञान हुआ। वह वीतरागी ज्ञान यह ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है, आहाहा ! तब जो वीतरागी ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन के साथ में ज्ञान, उस ज्ञान का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है तब राग है उसको जानना यह भी कहना व्यवहार है। यह पर्याय जो ऐसी उत्पन्न होती है, स्वपरप्रकाशक वीतरागी पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहाहा ! ऐसी बातें है बापू ! समझ में आया आहाहा !

प्रभु तुम्हारी वस्तु में तुम्हारी वस्तु की महानता इतनी है, कि जहाँ परमात्मा की पर्याय भी इसके पास पानी भरे, क्योंकि पर्याय तो एक समय की और यह भगवान तो अनंतगुणों का पिण्ड (त्रिकाली) पूरा है। आहाहाहाहा ! और भगवान की पर्याय है वह भी व्यवहारनय का विषय है। आहाहाहाहा ! अरे ! क्या कहते हैं यह ? यह प्रभु अंदर बुलाते है। यह मार्ग यह है। आहाहा ! क्या कहा ? व्यवहार आता है न ? परंतु प्रभु सुन तो सही। यह कहीं वीतराग के शास्त्र का तात्पर्य नहीं। इसलिए उसके कारण स्वचैतन्यमूर्ति भगवान, उसको उपादेय मानकर जब ज्ञान हुआ,

सम्यग्दर्शन के साथ, यह ज्ञान भी वीतरागी पर्याय है। वीतराग के आश्रय से वीतरागी पर्याय है, यह सरागीज्ञान नहीं और यह ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक है। इसलिये जिसने त्रिकाली ज्ञायक का आश्रय लिया, उसका ज्ञान स्वपरप्रकाशक पर्याय में वीतरागी उत्पन्न होगा, तब वह राग आता है उसको वीतरागी ज्ञान से जानते है - ऐसा कहना भी व्यवहार है। आहाहाहा ! वास्तव में तो वीतरागी पर्याय को जानते है। आहाहा ! यह परमात्मा की वाणी है बापा ! ऐसी कहीं नहीं है अन्य (जगह) और न्याय से उसे स्वीकृत हो जाय - ऐसा है, थोड़ा ध्यान रखे तो। यह कहीं खींचकर जबरदस्ती मनवाने कराने की बात हो - ऐसा कहीं नहीं। आहाहा ! इसके सहज स्वरूप की बात आयी है। ठीक अभी बराबर हमारे मोहनलालजी और सभी सुनने आये हैं और यहाँ यह नयी बात निकाली है हो - ऐसा अभी तक स्पष्ट आया नहीं। आहाहा !

अन्य कारण के बिना मिथ्यात्व कर्म के उदय का वमन करके `उच्चैः परमज्योति समयसार'। ऐसी अतिशय परमज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा, समयसार अर्थात शुद्धात्मा। - ऐसा ज्योति समयसार कहा न ? समयसार। अर्थात शुद्धात्मा। समयसार शब्द लिखा है न अंदर उच्चै परम ज्योति समयसारः उच्चै अतिशयरूप परम ज्योतिरूप वहाँ तक तो उच्चै परमज्योति अर्थ किया। अब कौन ? कि समयसार। अर्थात कौन ? कि शुद्धात्मा। आहाहा ! यह श्लोक तो संतो का है। यह कहीं बात बापू ! यह कहीं। आहाहा ! गजब बातें भाई !

`यह समयसार... आहाहा ! को तत्काल ही देखते है' शुद्धात्मा को, शुद्धात्मा का आश्रय लिया और उसके कारण से मिथ्यात्व का वमन हो गया। तब तत्काल शुद्धात्मा का दर्शन उसको होगा। समझ में आया ? शुद्धात्मा को तत्काल ही देखते है, `सपदि इक्षन्ते' सपदि अर्थात तत्काल, इक्षन्ते अर्थात देखते हैं। `ऐव' अर्थात `ही' ही तत्काल है न ही तत्काल देखते ही अथवा तत्काल ही देखते हैं। आहाहा ! भगवानआत्मा ! पूर्ण शुद्ध अखण्ड अभेद चीज। उसका जब आश्रय करते हैं तब वीतरागी पर्याय में (जो) पूर्णानंद आत्मा है, यह देखने में प्रतीति में आता है। ***देखने में आता है अर्थात प्रतीति में सारा आत्मा है - ऐसा आया, भले प्रतीति में आत्मा आाय नहीं। आहाहा ! परंतु शुद्धात्मा है - ऐसा पर्याय में ज्ञान आ गया, शुद्धात्मा है ऐसी प्रतीति में श्रद्धा में सारा आत्मा आ गया, आत्मा आ गया अर्थात शुद्धात्मा है कैसा कितना (है) ऐसी प्रतीति आ गई, शुद्धात्मा तो शुद्धात्मा में रहा। आहाहाहा ! मार्ग बहुत सूक्ष्म बापू। आहाहा ! (श्रोता :- आप स्पष्ट करके समझाते है) ऐसी तो बात निकलती है। देखो न अंदर से आती है (वैसी) निकलती है। आहा ! वह बिचारे नहीं आये***

अभी देर से आयेंगे। वह आनेवाले है न दांत के डॉक्टर ? किस्मत हो उसे सुनने मिले ऐसी बात है, यह तो। आहाहाहा !

`सपदि इक्षन्ते एव' जिस जिसने जिनस्वरूप भगवान, इसका आश्रय लिया तब पर्याय में सारा आत्मा तत्काल देखने में आता है, पर्याय में सारा आत्मा कितना कैसा पूर्ण है, उसका ज्ञान हो जाता है। यह पर्याय में उसको देखता है। आहाहा ! पर्याय में देखते हैं। उसका अर्थ ? ***वीतरागी पर्याय में वीतरागस्वरूप जैसा है वैसा ज्ञान में आया। - ऐसा प्रतीति में आया। आहाहा ! वस्तु तो वस्तु में रहीं, परंतु पर्याय जो उसके आश्रय से प्रगट हुई उस पर्याय में सारा भगवान शुद्धात्मा जो वीतरागस्वरूप है - ऐसा वीतरागी सम्यग्ज्ञान में, वीतरागी यह स्वरूप है - ऐसा ख्याल में आ गया।*** आहाहा ! गजब बात है।

अब यह समयसार कोई कहे बाँच गया, बापा ! भगवान ! यह क्या है बापू ! आहाहा ! `वह समयसाररूप शुद्धात्मा नवीन उत्पन्न नहीं हुआ' देखने में आया यह कहीं नया नहीं है। देखने में आया उस समय तो लगता है कि नया। वस्तु तो है यह है। जिस समय देखने में आया। परंतु देखने में आई चीज कोई नयी नहीं है। पर्याय, वीतरागी पर्याय में देखने में आया। यह वीतरागी पर्याय नई है, परंतु जो देखने में आई वह चीज कहीं नई नहीं है। अनादि की है। आहाहा ! किन्तु पहले कर्म से आच्छादित था, राग की एकता बुद्धि से आच्छादित थी, जो सो प्रगटरूप व्यक्त हो गया और वह सर्वथा एकांतरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता निर्बाध है। कुनय से खण्डित करें तब भी यह खण्डित नहीं होता ऐसी वह वस्तु है।

- प्रमाण वचन गुरुदेव !